पृथ्वी के सर्वप्रथम दलित हितचिन्तक महादेव शिव से सम्बन्धित
अनेक रहस्यों का विश्लेषण करती हुई उत्कृष्ट रचना,
जो आपकी सोच को प्रभावित करेगी

देवाधिदेव

(शून्य से शिखर की ओर)

डॉ. शशिभूषण

देवाधिदेव
(प्रथम भाग)

शून्य से शिखर की ओर

रचनाकारः
डॉ. शशिभूषण

E-mail: dr.bhushanvns@gmail.com
E-mail: amritcomputer1996@gmail.com

Copyright © 2019, Shashi Bhushan
All rights reserved.

No part of this publication may be reproduced or transmitted in any form or by any means, electronic or mechanical, including photocopy, recording or any information storage and retrieval system now known or to be invented, without permission in writing from the publisher, except by a reviewer who wishes to quote brief passages in connection with a review written for inclusion in a magazine, newspaper or broadcast.

Published in India by Prowess Publishing,
YRK Towers, Thadikara Swamy Koil St, Alandur, Chennai,
Tamil Nadu 600016

ISBN: 978-93-89097-64-1

Library of Congress Cataloging in Publication

मुझे स्मरण है, उस दिन प्रकृति की मुद्रा बहुत भयंकर थी। पूरे पखवाड़े भगवान आदित्य अपना सम्पूर्ण तेज उन पर्वतों पर उड़ेल रहे थे, जो सहस्त्रों वर्षों से गर्वपूर्वक आसमान में अपना मस्तक उठाये हुए अविचल खड़े थे। तीव्र ताप से पर्वत शिलायें क्षुब्ध हो गई थीं। उनसे आँच निकलने लगी थी। वृद्धजन बता रहे थे, ऐसा दृश्य उनके पुरखों ने भी नहीं देखा था। देखा होता तो बातचीत के क्रम में उसका वर्णन अवश्य हुआ होता। यानि कुछ अद्‌भुत हो रहा था। प्रकृति बेचैन हो रही थी। पर्वतों के नीचे के विशालाकार सैकड़ो योजन तक फैली हिमशिलाओं में पिघलन आ गई थी। नदियों–नालों के जल इन पिघले हुए हिमजलों की उफान मारती लहरों के साथ मिलकर अपनी निकटवर्ती बस्तियों में प्रलय का दृश्य उपस्थित कर रहीं थीं।

किन्तु.....

....प्रलय ही होगा, ऐसी कल्पना किसी ने नहीं की थी। कई दिनों तक तीव्र धूप, तत्पश्चात् अविराम गति से प्रारम्भ हुई वर्षा.....! निवास डूबने लगे। ग्राम डूबने लगे। गायें और अन्य पशु जल की तीव्र धारा के आगे नतमस्तक हो बेबस और लाचार मृत्यु को प्राप्त हुए। मेरी बछिया, मेरा श्वान..... रथ..... सबकुछ इस भीषण जलप्रलय की चपेट में आकर नष्ट हो गया।

लोग अपने–अपने निवासों को त्याग, अपनी शारीरिक क्षमतानुसार पर्वत श्रेणियों पर चढ़ गये। स्त्रियों और बच्चों को भी जितना सम्भव था, उतनी ऊँचाई पर ले जाया गया।

अभी मेरी उम्र ही क्या थी। अभी तो नंगे बदन पर्वत शिखरों और उनपर फैले वृक्षों की डालियों पर दौड़ता फिरता था। अपनी उम्र के अनुपात से मैं अपने बराबर के बच्चों से काफी ऊँचा, लम्बा और शारीरिक तथा बौद्धिक क्षमता से युक्त था। मेरा आविर्भाव ही पर्वत पर हुआ था, सो ये पर्वत मेरे मित्र प्रतीत होते थे। पर्वत शिखरों की ऊँचाई पर कौन कितनी शीघ्रता से पहुँचता है, यह हमारी नित्य की क्रीड़ा थी। झंझावातों का वेग कौन कितना सह सकता है, कौन कितना दौड़ सकता है, कूद सकता है, उछल सकता है..... यहीं सब हम मित्रों के मनभावन कार्य थे।

उस भयावह दिन का दृश्य भुलाये नहीं भूलता ? हमारी बस्ती व आसपास की बस्ती के सारे लोग क्षमतानुसार ऊँची–ऊँची पर्वत श्रेणियों पर अपनी जीवन रक्षा हेतु चढ़े हुए थे। लगभग मध्याह्न का समय था। ऊँचाई पर होने से योजनो दूर तक दिखाई दे रहा था। सभी पर्वत श्रेणी लोगों से भरे हुए थे। हमारे सम्मुख काफी दूर तक पर्वत

श्रृंखला दिखाई दे रही थी। वर्षा अनवरत धीमी गति से प्रारंभ थी। अचानक प्रकृति ने करवट बदली। वर्षा की बूँदों ने गति पकड़ी। गति इतनी तीव्र थी कि आगे क्या हो रहा है, अस्पष्ट होने लगा। अभी सम्मुख जो पर्वत श्रेणियाँ और उनपर आश्रय लिये लोग दृष्टिगोचर हो रहे थे, वे छायामात्र दिखाई देने लगे, और फिर नेत्रों से ओझल हो गये। केवल पूर्व के देखे हुए दृश्यों से वहाँ के भावी दृश्यों का अनुमान हो रहा था।

वर्षा का वेग तीव्र से तीव्रतर होता जा रहा था। पर्वत श्रेणियों पर बिखरी पड़ी चट्टानें जलप्रवाह के साथ वेग से आगे बढ़ने लगीं। जल का स्तर और उसकी भयानकता बढ़ती जा रही थी। गज के समान विशालाकार शिलायें जल के प्रचंड वेग के आगे नतमस्तक होकर अपना स्थान छोड़ रही थीं। चट्टानों के आपस में टकराने से भीषण शोर हो रहा था। कान के परदे फटे जा रहे थे। किसी को किसी की सुधि नहीं थी। पिता.... माता..... बन्धु..... परिजन..... पड़ोसी..... धन..... ऐश्वर्य..... पराक्रम..... सब व्यर्थ ! अपने प्राण बचाओ ! स्वयं को देखो ! स्वयं की रक्षा करो ! स्वयं की रक्षा..... अपने अस्तित्व की रक्षा.....!

अचानक शिलाओं के साथ जल की एक प्रचंड लहर आई..... पर्वत की निचली श्रेणी पर आश्रय लिये लोगों की प्राणान्तक चीख भी सुनाई नहीं दी, और निचला हिस्सा जलमग्न हो गया। हजारों लोग अभी थे..... अब नहीं हैं..... अब कभी नहीं होंगे.....!

लगभग कोस भर ऊँचे पर्वत की एक ऊँची भुजा पर मैं आश्रय लिये हुए था। दो–तीन शिलाओं की सन्धि से बने दरारनुमा गुफा में बैठा प्रकृति की विनाशलीला देख रहा था। वर्षा के वेग के विपरीत होने और ऊपरी शिला के आगे निकले होने के कारण लगभग सुरक्षित था। यह स्थान पृथ्वीतल से अन्दाजन सौ हाथ ऊपर था। नीचे इस विशाल पर्वत की अनेक भुजायें फैली थी, जिनपर लोग आश्रय लिये हुए थे।

वर्षा का वेग कुछ कम हुआ। नेत्रों की दृश्यता बढ़ी। नीचे का दृश्य देख मष्तिष्क सन्न रह गया। भूतल से लगभग पैंतीस–चालीस हाथ की ऊँचाई पर कुछ नहीं था। वेग से बहती छोटी शिलायें, बड़ी शिलायें, छोटे–बड़े चट्टान, प्रचण्ड शोर करते हुए जल के तीव्र वेग के साथ बढ़ते जा रहे हैं। उसी जलप्रवाह में कभी–कभी निकटवर्ती बस्तियों से बहकर आनेवाले पशुओं और मानवों के शव अथवा उनके क्षत विक्षत अंग दिखाई दे जाते थे। वे बहते हुए अंग भी दो शिलाओं में पिसकर अपने अस्तित्व को जल में विलीन करते जा रहे थे।

निशा सम्राज्ञी चुपके–चुपके दबे पाँव निकट आती जा रही थीं। आश्रयस्थल से जल की धारा अभी बहुत नीचे थी। कहीं कुछ नहीं। पर्वत..... पर्वत में बनी आश्रय स्थली..... भीषण शोर..... प्रकृति का भीषण रूप..... और..... और मैं ! निपट अकेला !

अचानक आकाश में बिजली कड़की। एक भीषण धमाके की आवाज हुई, जैसे धरती फट गई हो। मैंने अपनी आश्रयस्थल बनी उन विशालाकार शिलाखण्डों में हुए कम्पन को अच्छी तरह अनुभव किया। बिजली लगातार कड़कने लगी। कुछ समय के अन्तराल पर दो–तीन बार और भीषण ध्वनियाँ हुई, शिलाओं के टकराने का स्वर आया,

किन्तु इस बार आश्रयस्थल की शिलायें स्थिर रहीं। वर्षा बन्द हो गयी थी। मैं शून्य मस्तिष्क लिये चुपचाप बैठा रहा। अचानक जलप्रवाह के वेग का शोर बढ़ गया। रह–रह कर शिलाओं के टकराने की ध्वनि कानों में आने लगी। विद्युत् चमक से प्राप्त क्षणिक प्रकाश में सामने के दृश्य की जो झलक मिली, उसने मस्तिष्क की शून्यता को और बढ़ा दिया।

.....सामने के दो बड़े पर्वत अपने आधार पर तिरछे हो गये थे..... उनका उपरी शिखर ध्वस्त हो चुका था..... उनका आकार और स्थान परिवर्तित हो गया था। इस दृश्य ने सम्पूर्ण शरीर को जड़ कर दिया। शरीर के अवयव शिथिल हो गये। शिला की तरह शिला के बीच बैठा इस विनाशलीला अथवा परिवर्तनलीला का मौन दर्शक बना रहा।

बिजली पुनः चमकी। अबकी जो दृश्य दिखा, उसने मुझे चैतन्य और सक्रिय कर दिया। जलस्तर मात्र पन्द्रह बीस हाथ नीचे रह गया था। मुझे और ऊपर जाना पड़ेगा। इस प्रकुपित प्रकृति से अपनी रक्षा करनी पड़ेगी। स्वयं की रक्षा.... स्व रक्षा.....!

प्राणों पर आसन्न संकट देख मस्तिष्क की जड़ता टूटी। तत्काल चेतना लौटी। त्वरित निर्णय..... ऊपर.... और ऊपर.....! अभी तो पर्वत की आधी ऊँचाई पर भी नहीं था। त्वरित गति से निर्णय भी करना था..... क्रियान्वित भी करना था....। पर्वत की आश्रयस्थल भुजा से मुख्य पर्वत पर जाने के लिये लगभग दस हाथ नीचे उतर कर पुनः ऊपर चढ़ना था। सम्पूर्ण शरीर में विद्युत्–तरंग सी भर गई। सभी अंग..... सभी ज्ञानेन्द्रियाँ चैतन्य और सजग हो गईं.... अपनी सम्पूर्ण क्षमता के साथ....! असीम ऊर्जा और शक्ति से भरपूर। नीचे उतरा। उबड़–खाबड़ चट्टानें..... उनमें छिपे जीव–जन्तु की आशंका..... पत्थरों की फिसलन..... और सबसे बड़ी परेशानी..... चारो तरफ फैला अँधेरा। यद्यपि कि आँखें अँधेरे में धुँधले रूप में देख रही थीं, पर ऊपर चढ़ने के लिये चट्टानो के आकार–प्रकार और पकड़ बनाने वाली जगह की जो निश्चयात्मकता चाहिये, वह अप्राप्य थी। रह–रह कर कड़कती बिजली की रोशनी के क्षणिक समयान्तराल में अगली शिला के आकार–प्रकार और अगले कदम का निर्धारण करना था। मस्तिष्क की सम्पूर्ण तरंगे अपनी सम्पूर्ण क्षमता से एकाग्र थीं। केवल एक लक्ष्य..... ऊपर चढ़ो ! जितना ऊपर चढ़ सकते हो..... चढ़ो ! काल को अपनी मुट्ठी में करो। अजेय बनो। ! सम्पूर्ण इन्द्रियों को वश में करो.... ऊपर बढ़ो ! ऊपर..... शून्य में.....!

एकाग्र और अथक प्रयास। क्रीड़ा के दौरान प्राप्त किया गया पर्वतारोहण चातुर्य आज प्राणों की रक्षा कर रहा था। धैर्यपूर्वक एक–एक हाथ ऊपर सरकता रहा।

धैर्य..... एकाग्रता..... निश्चय..... दृढ़ता..... और जीवित रहने की जीजिविषा। काल को पराजित करने की जीजिविषा। ऊपर की ओर अग्रसर होता गया। लगा कि अब कम से कम प्राणों का संकट नहीं है।

इस प्रयास में कितना समय व्यय हुआ, पता नहीं, कितनी शारीरिक और मानसिक ऊर्जा व्यय हुई, पता नहीं। भूत क्या था.... भविष्य क्या होगा..... यह विचार भी मस्तिष्क में नहीं। बस वर्तमान ! भूत शून्य हो गया था..... भविष्य शून्य हो गया था..... साकार

था केवल वर्तमान ! सुरक्षित स्थल प्राप्त हो गया। जलप्रवाह और चट्टानों के टकराने का शोर कुछ कम हो गया था। अब सिर्फ मैं था..... प्रकृति थी..... और शून्यता थी। मस्तिष्क में कभी घटाटोप अन्धकार छा जाता था, कभी तीव्र चमकदार प्रकाशपुंज की लहर उठती थी।

कितना समय बीता..... कैसे बीता..... कुछ समझ में नहीं आ रहा था। मस्तिष्क तरंगे उधर जा ही नहीं रही थी। अन्तरमन में एक घनघोर अंधकार था। चारो तरफ अंधकार। इस अंधकार में संपूर्ण अस्तित्व जैसे विलीन हो गया। पर्वत, शिलायें, शोर.... सब शून्य हो गया। शून्य.... शून्य..... सब तरफ शून्य..... केवल शून्य..... ! अचानक इस शून्य से एक तीव्र प्रकाश किरण उभरी और पुनः उसी शून्यता में विलीन हो गई।

□ □ □ □

सूर्य की रश्मियों ने चैतन्यता की जड़ता को तोड़ा। उजाला फैलना प्रारंभ हो गया। कुछ ही समय बाद जो दृश्य दिखा, उसे देखने की कल्पना भी नहीं थी। सामने फैली सैकड़ो योजन की विशाल पर्वत श्रृंखला लुप्त हो गयी थी। जहाँतक दृष्टि जाती थी, बड़े–बड़े पर्वत, बड़ी–बड़ी विशालाकार शिलायें, बड़े–बड़े वृक्ष, जो कलतक अपने अडिग अस्तित्व पर गर्व करते थे, निःसहाय, भग्न और क्षत–विक्षत अवस्था में बिखरे हुए थे, मानो काल के विशाल, निष्ठुर और क्रूर हाथों ने उस सम्पूर्ण परिक्षेत्र को अपनी हथेली से दबाकर धरती में विलीन कर दिया हो। आश्रयदाता पर्वत के चारो तरफ की भूमि लगभग तीस हाथ की ऊँचाई तक शिलाओं और वृक्षों आदि से भर गयी थी। वतावरण अत्यधिक शीतल था। रात्रि में आश्रय देने वाले स्थान का निरीक्षण किया। वह दो चट्टानों के बीच की एक समतल दरार थी, जिसके मध्य में एक छोटी और समतल शिला फँसी हुई थी। ऊँचाई तो तीन–चार हाथ ही थी, पर लम्बाई और गहराई पर्याप्त थी। वहाँ कुछ समय व्यतीत किया जा सकता था।

खड़े होकर मैंने अपने सामने दिखाई देने वाले परिदृश्य का अवलोकन किया। उजाला फैलते ही सबकुछ स्पष्ट दिखाई देने लगा। योजनों तक फैली पर्वत श्रृंखलायें अब ऊबड़–खाबड़ चट्टानी मैदान के रूप में दिखाई दे रही थी। चट्टान और धराशायी वृक्ष दूरतक दृष्टिगोचर होते थे।

क्षुधा का आभास होने लगा। दैनन्दिन प्रक्रिया की चिन्ता उठी। मन में प्रश्न उठा.... और क्या–क्या बचा है ? मानव, पशु, वनस्पति..... क्या कहीं कुछ बचा भी है ?

अब मैं अपनी स्थिति पर विचार करने लगा। क्या इस धरती पर केवल मैं ही जीवित शेष हूँ या कुछ और लोग भी शेष बचे हैं ? पर्वत के पृष्ठभाग का दृश्य आँखों से ओझल था। उधर क्या कुछ शेष बचा है ? भोजन, आहार की क्या व्यवस्था होगी ? वस्त्र भी जो तन पर हैं, यहीं हैं ? इस विस्तृत निर्जन धरती पर मेरे जीवन की रक्षा कैसे होगी ? क्या मैं भूख से तड़प–तड़प कर मर जाऊँगा ? अगर ऐसा ही था तो प्रकृति ने मुझे जीवित क्यों रक्खा ? पर्वत के नीचे की स्थिति का अवलोकन किया। कुछ समझ में नहीं आया। बस्तियों–ग्रामों का नामोनिशान नहीं था। पथ–पगडंडियाँ विलुप्त हो गई थीं। दिशा का आभास देने वाले चिन्ह, पर्वत चोटियाँ, वृक्ष..... सब अनजाने से थे। सबकुछ बदल गया

था। इन बदली हुई परिस्थितियों ने मुझे अवाक् कर दिया था।

नित्यक्रिया की चिन्ता सताने लगी। नीचे उतरना पड़ेगा। वगैर नीचे उतरे कुछ निश्चित नहीं किया जा सकता। अगर मैं जीवित बच ही गया हूँ, प्रकृति ने मेरे जीवन की सुरक्षा की है, तो इसमें भी कुछ रहस्य होगा ? मैंने प्रतीत किया कि मेरा विवेक स्वतः आश्चर्यजनक रूप से परिपक्व हो गया है। मन में घबराहट नहीं थी, शून्यता थी। अपने–पराये किसी की भी मृत्यु का सन्ताप मन में नहीं था। शोक–क्रोध कुछ नहीं था।

सावधानी से अपने आश्रयस्थल से नीचे उतरने लगा। समतल पर आकर मैंने दूर तक विहंगम दृष्टि डाली। जहाँतक दिखाई देता था.... बस शिलायें..... कंकड़–पत्थर के ढेर। उन ढेरों में अनेक स्थान्रें पर वृक्ष की टहनियाँ और अन्य वनस्पतियाँ दीख रही थीं। मैंने पर्वत के पिछली तरफ जाने का निश्चय किया। मार्ग में पड़ी बड़ी–बड़ी शिलाओं ने बहुत बाधा दी, पर अन्ततः मुझे पर्वत के दूसरी तरफ का दृश्य दिखाई देने लगा। मेरे पीछे के दो पर्वत अपने स्थान पर अडिग तो थे, पर उनकी ऊँचाई में बहुत अन्तर हो गया था। उनके पीछे का एक पर्वत अपने स्थान पर टेढ़ा हो गया था तथा उसकी कई भुजायें व शिखर टूट गये थे। कुछ नये विशालकाय पर्वत धरती से अपना मस्तक निकाले बाहर झाँक रहे थे, मानो बीज के सम्पुट से नयी और पहली कोंपल बाहर निकल उन्मुक्त वातावरण की विचित्रता को निहार रही हो।

मैं धीरे–धीरे आगे बढ़ने लगा। उन उबड़–खाबड़ चट्टानी रास्तों को पार करता हुआ मैं अपनी बस्ती की जगह का अनुमान करने लगा। बस्ती के आगे कुछ ही दूर पर नदी थी, जो गाँव को तीन ओर से घेरे हुए थी, अब उसका नामोनिशान नहीं था। सम्पूर्ण बस्ती, नदी के पार का आश्रम, सामने अपेक्षाकृत कम ऊँचाई के दो पर्वत, सभी कुछ अदृश्य हो गया था। एक ही झटके में प्रकृति ने मानो धरा ही उलट दी हो। पूर्व परिचित कुछ नहीं था। सब नया.... सब अपरिचित..... !

आहार ! सर्वप्रथम आहार की व्यवस्था देखनी होगी। शाकाहार या मांसाहार ! कोई भी आहार इस शरीर मात्र के पोषण के लिए पर्याप्त है। जल भरपूर मात्रा में उपलब्ध है।

कुछ देर चलने के बाद एक जलस्रोत के पास नित्यक्रिया से निवृत हुआ। स्नान किया। वस्त्र केवल वहीं थे जो मैंने धारण किये थे । उन्हीं वस्त्रों को पुनः धारण किया। सूर्य की किरणें कुछ प्रखर हो गयी थीं। वातावरण की ठण्ढ में पर्याप्त कमी आ गई थी। मैं आहार की खोज में आगे बढ़ता चला गया। कहीं कुछ नहीं। कहीं कुछ दिखता भी था तो केवल जल, शिलायें, कंकड़–पत्थर के ढेर। अचानक दो शिलाओं के बीच दबी एक वृक्ष की बड़ी सी डाल दिखाई पड़ी। वह मेरे लिए अज्ञात किसी वृक्ष की डाल थी, जिसपर अभी भी बहुत सारे पत्ते और कुछ फल दिख रहे थे। मन में शान्ति भी मिली और घबराहट भी हुई। घबराहट इसलिए कि उस वृक्ष और उसके फलों से मैं अनजान था। पास गया। वृक्ष की डाली मेरी अपेक्षा से कहीं बड़ी थी। एक फल तोड़ा। चखा। उसका स्वाद कुछ–कुछ खट्टा और कषाय था। कुछ फल खाये, कुछ तोड़कर दोनों हाथों में ले लिये।

आगे बढ़ता गया। सूर्य सिर पर आ गये थे। आकाश बिल्कुल स्वच्छ था। कल इसी

आकाश में बादल प्रलय की दुन्दुभी बजा रहे थे, पर आज बादल का एक टुकड़ा भी दृष्टिगोचर नहीं हो रहा था। एक शिला की छाया में बैठकर विश्राम करने लगा। मस्तिष्क में दो ही विचार चक्कर काट रहे थे..... आहार और सुरक्षित आवास। कुछ समय पश्चात् फिर उठा और आगे बढ़ गया। सोचता रहा..... चलता रहा। चलता रहा.... सोचता रहा ! कितना क्षणभंगुर है यह जीवन। कुछ दिन पहले तक क्या था ? कुछ ही दिन में क्या हो गया ? माता–पिता, भाई–बन्धु, परिजन–पड़ोसी, मित्रता–शत्रुता, धन–सम्पत्ति, वैभव–पराक्रम..... प्रकृति के एक झटके ने सबकुछ छीन लिया। प्रकृति अब पुनः अपने को शून्य से प्रारंभ करेगी, और यही आदेश वह मुझे भी दे रही है।

बहुत देर तक वैचारिक मंथन चलता रहा। किरणों की प्रखरता शान्त होने लगी। वातावरण में ठण्ढ का असर बढ़ने लगा। मैं उठ खड़ा हुआ। अब एक आश्रय की व्यवस्था करनी होगी, जहाँ रात्रि व्यतीत की जा सके। कल का आश्रयदाता पर्वत बहुत पीछे छूट गया था। रात्रि से पूर्व ही कोई व्यवस्था करनी होगी। कुछ ही दूर पर सामने दो शिलाओं के बीच का संधिस्थल रात्रि व्यतीत करने हेतु उचित लगा।

वातावरण में धुँधलका छाने लगा और साथ ही ठण्ढ बढ़ने लगी। मैं एक गुफानुमा दरार में प्रविष्ट हो गया। वहाँ एक व्यक्ति के विश्राम लायक पर्याप्त स्थान था। मैं उस शिला पर बैठ गया। कब निद्रादेवी ने अपनी गोद में ले लिया, यह जान नहीं पाया।

अचानक नींद खुली। नींद खुलने का कारण अत्यधिक ठण्ढ थी। मैं शिला पर उठकर बैठ गया। समय का कुछ अनुमान नहीं लग पा रहा था।

शेष रात्रि बैठे–बैठे व्यतीत हो गई। प्रातः हुई। मैं गुफा से बाहर निकला। जलस्रोत के पास जाकर हाथ–मुँह धोया, जल पिया, नित्यक्रिया से निवृत हुआ, स्नान किया और पुनः गुफा में आ गया। सूर्य देवता की आराधना की। चार फल जो कल लाया था, उसका आहार ग्रहण किया। आज चित्त बहुत शान्त था। शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति कर, मैं एक अपेक्षाकृत ऊँची शिला पर शान्त चित्त होकर बैठ गया।

विचार मंथन प्रारंभ हो गया था। यह तो लगभग निश्चित था कि इस प्रलय समाप्ति के पश्चात् कुछ ही प्राणी जीवित होंगे।

पर कहाँ ?

मन के ही किसी कोने से प्रत्युत्तर मिला– 'जहाँ इस प्रलय का प्रभाव न हुआ हो।'

'कहाँ इस प्रलय का प्रभाव नहीं हुआ है ?'

'इसे ढूँढना होगा।'

'कैसे ?'

'ऊँचे पर्वत शिखरों पर चढ़कर अवलोकन करना होगा।'

समय व्यर्थ नष्ट किये बिना तत्काल मैं इधर–उधर नेत्र घुमाकर किसी ऊँचे पर्वत की खोज करने लगा। मेरा उस प्रलयरात्रि का आश्रयदाता पर्वत यद्यपि बहुत ऊँचा था, और इस कार्य के लिए सर्वथा उपयुक्त था, पर इस समय वह बहुत दूर था। तत्काल ही निकट के पर्वतों में से एक का चुनाव किया और तीव्र गति से उधर आगे बढ़ा। रास्ते में

अनेक उबड़–खाबड़ शिलाओं से अत्यधिक परेशानी हुई, पर लगभग घड़ी डेढ़ घड़ी चलने के बाद मैं उस पर्वत के नीचे पहुँचा। निश्चय ही यह पर्वत बहुत विशाल था। उसका आधार बहुत विस्तृत रहा होगा, पर अभी तो उसके चारो ओर विशाल और नुकीले शैलखंडों का ढेर लगा हुआ था।

पत्थरों के नुकीलेपन से अपने को बचाते हुए ऊपर चढ़ने लगा। इस पर्वत की भी छोटी–छोटी पकड़ वाली भुजायें छिन्न–भिन्न हो गयी थीं।

अथक परिश्रम के बाद मैं शिखर पर पहुँच कर चारो तरफ का अवलोकन करने लगा। दूर–दूर तक जीवन के कोई लक्षण दिखाई नहीं दिये। हाँ ! एक दिशा में काफी दूरी पर कुछ हरीतिमा का आभास मिला। मैंने अपना कर्तव्य निश्चित किया। वहाँ पहुँचना होगा। प्राणों की रक्षा के लिये वहाँ तक पहुँचना अनिवार्य है। दूरी का कोई सही आकलन करना मुश्किल था।

शिखर से नीचे उतरने के पूर्व मार्ग निर्देशन के लिए कुछ पर्वतों के स्वरूप को स्मरण रखने हेतु बार–बार देखा। नीचे उतरकर मैं अपने निर्धारित लक्ष्य की ओर बढ़ने लगा। दूरी मेरी अपेक्षा से अधिक थी। मैं एक ऊँची शिला पर चढ़कर पीछे की तरफ देखने लगा। अबतक तय की गई दूरी और आगे की तय की जाने वाली दूरी..... दोनों को तुलनात्मक रूप से देखा। गंतव्य तक पहुँचने में निरन्तर चलते रहने के बाद भी तीन–चार दिन लग जायेंगे। अधिक भी लग सकते हैं।

संध्या होने में अब अधिक विलम्ब नहीं था। कहीं न कहीं आश्रय खोज लेना चाहिये।

□ □ □ □

आज पाचवाँ दिन था, महाप्रलय की रात्रि को बीते। शारीरिक प्रक्रियाओं और आवश्यकताओं की पूर्ति का एक निश्चित क्रम बन गया था। आसपास के क्षेत्रों की सामान्य स्थिति का अच्छा ज्ञान हो गया था। शिलाओं के नीचे के दर्रों, दरारों और छिद्रों ने एक अदृश्य भूमिगत पथों का संजाल सा निर्मित कर दिया था, जो ऊपरी तल की दूरियों को आधे और चौथाई समय से भी कम में तय करा सकता था।

अनेक दिवस मैंने इन भूमिगत मार्गों के अनुसंधान में बिताये। अभीतक किसी अन्य उपयोगी वस्तु के दर्शन नहीं हुए थे, किन्तु इतना अवश्य था कि दस–पन्द्रह कोस के भूम्यान्तर्गत अदृश्य मार्गों का समुचित ज्ञान हो गया था। यह मार्ग पर्वत शिलाओं के नीचे ही नीचे था, जो पत्थरों के आपस में टकराकर रुकने के बाद बने छिद्रों, दरारों और कन्दराओं से होकर आगे बढ़ता था। इस भूमार्ग में अनेक स्थानों पर जलस्रोत भी थे, जो बाहर से अदृश्य थे। अब मुझे आभास होने लगा कि उस प्रलय रात्रि को जो अथाह जलराशि दिख रही थी, वह प्रातः होते ही कहाँ विलीन हो गई थी।

इस अदृश्य मार्ग में भ्रमण करते हुए कहीं–कहीं थोड़ा ज्यादा गहराई में जाने पर हिम के भी दर्शन हुए थे। मन में प्रश्न उठा था..... क्या यह सम्पूर्ण पर्वतीय क्षेत्र नीचे से हिम पर स्थित है ? प्रश्न तो था..... पर उत्तर नहीं था। इसके लिए अनुसंधान करना होगा..... खोज करनी होगी..... तप करना होगा..... ! प्रकृति से ही यह पूछना होगा।

प्रकृति ही उत्तर देगी। प्रकृति ही अपना रहस्य मुझे बतायेगी। किन्तु कब..... कैसे..... कहाँ..... यह ज्ञात नहीं। अपने भ्रमण किये जा चुके स्थानो पर मैंने स्मृति चिन्ह अंकित कर दिये थे। मैं उठ खड़ा हुआ और उस दिशा में प्रस्थान किया, जहाँ कल अपना अनुसंधान स्थगित कर वापस आ गया था।

विगत दिवसों में मैंने इतने ऊँचे नीचे, पथरीले, दुर्गम और सँकरे मार्गों पर भ्रमण किया कि अब लगभग उनका अभ्यास हो गया था। पैदल चलने और पर्वतारोहण की गति में तीव्रता आ गई थी। शरीर के अंग–प्रत्यंगों का लचीलापन बढ़ गया था। पतले छिद्रों और दरारों में घुसने, ऊँची पर्वत शिलाओं पर चढ़ने आदि में अब निपुणता आ गई थी। क्षुधा भी अब पहले जैसा नहीं सताती थी, और जल सर्वत्र उपलब्ध था। शारीरिक बनावट में भी अन्तर आने लगा। लम्बा और स्वस्थ तो मैं पहले भी था। केशों की वृद्धि से अभी परेशानी नहीं थी, पर वस्त्र बिल्कुल चिथड़े हो गये थे। यद्यपि कि उस निर्जन, प्राणीविहीन स्थान पर केवल मैं ही शेष था, परन्तु फिर भी नग्न घूमने की बात मस्तिष्क स्वीकार नहीं कर रहा था। कोई नहीं है..... पर माता प्रकृति तो हैं। मैं उनका पुत्र हूँ, और तरुण पुत्र को भी माता के सम्मुख नग्न नहीं रहना चाहिये।

कल की अपेक्षा आज कुछ शीघ्र ही गंतव्य पर पहुँच गया। कन्दरा में प्रविष्ट हुआ। कल ही मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि कन्दरा से भूमि के अन्दर ही अन्दर बहुत से मार्ग छिद्रों, दरारों व दर्रों के माध्यम से बहुत दूरी तक गये हैं।

रात्रि में गुफा के भीतर लेटा मैं विचार करने लगा..... इस जनविहीन स्थान में रहते हुए मुझे पन्द्रह दिन से अधिक हो चुके थे। मेरे केश अस्त–व्यस्त हो गये थे, वस्त्र नहीं होने के बराबर थे। यद्यपि कि अनियमित और अपुष्टिकर आहार से शरीर कुछ दुबला हो गया था किन्तु पेशियों और स्नायुओं की शक्ति और स्फूर्ति में वृद्धि हो गई थी। अनिश्चित परिणाम वाली निरन्तर सक्रियता से ज्ञानेन्द्रियों की सजगता बढ़ गयी थी। ..... संभवतः सुविधाविहीन और संकटपूर्ण परिस्थितियों में, मन और शरीर, ये दोनों अपनी श्रेष्ठतम क्षमता का उपयोग करने लगते हैं। पत्थर की शिला पर सूखे पत्ते बिछाकर रात्रि व्यतीत करने में; शीत, ताप और जल का वेग सहने में; अति अल्प आहार का सेवन करने के पश्चात् भी शरीर और मन को पूर्णतः चैतन्य, सक्रिय और सजग बनाये रखने आदि प्रक्रियाओं में, शरीर की श्रेष्ठतम क्षमता का प्रदर्शन ही दिखता है।

मेरे विचार की दिशा बदली..... 'क्या मेरे मन और तन को प्रकृति अपने अनुकूल बनाना चाहती है ?' .....महाप्रलय में मेरा जीवित बचना, लम्बे समय तक जीवित बने रहना, जो साधन उपलब्ध हैं उन्हीं का उपयोग कर शरीर धारण किये रहना..... ये और क्या है ? .....यही तो है..... इतने संकटों और इतनी कठिनाइयों के बावजूद मेरा चिन्ता... शोक और भय से मुक्त रहना..... मेरे नेत्र बन्द हो गये..... एक सौम्य सा धवल प्रकाशविन्दु आकाश से उतर कर मेरी ओर आता दिख रहा था। किन्तु पास आने से पूर्व ही वह कई भागों में विभक्त हो लुप्त हो गया। मैं देर तक नेत्र बन्द किये बैठा रहा। वचार मंथन चलता रहा.....

..अगर माता मुझे अपने अनुकूल करना चाहती हैं तो मेरा भी तो कर्तव्य है कि इसमें

सहयोग दूँ। किन्तु..... अगर पुत्र का कर्तव्य है माता के अनुकूल होना, तो पुत्र भी माता से अपने पालन–पोषण और सुखी भविष्य हेतु मार्गनिर्देशन की अपेक्षा करता है।

शिला पर शान्त बैठा देर तक ध्यानमग्न रहा..... मन ही मन प्रार्थना करता रहा– ''हे माँ ! हे जगजननी ! मैंने अपना जीवन आपको अर्पण किया। आपके निर्देशों को पूरा करना मेरा कर्तव्य है.....!!''

□ □ □ □

प्रातः जल्दी उठ गया। गुफा से बाहर आ सितारों की स्थिति देख सूर्योदय के समय का अनुमान करने लगा। अनुमानतः दो घड़ी समय शेष था। नित्यक्रिया से निवृत हो, एकत्रित फलों में से कुछ फल खाये, जलस्रोत से जल पिया और प्रस्थान हेतु अपनी गुफा के पीछे वाली कन्दरा में प्रविष्ट हो गया। मार्ग में अब उतनी कठिनाइयाँ नहीं होती थी, और गमन की गति पूर्वापेक्षा तीव्र हो गई थी। दो ढाई घड़ी के अन्तराल में ही मैं उस विशाल शिलाखण्ड के पास पहुँच गया। उस शिला की जड़े बहुत गहरी थीं और ऊँचाई बहुत ज्यादा। सीधे पार करने में भूमिगत मार्ग का मिलना दुर्लभ था। उस शिलाखण्ड का घेरा काटकर दूसरी ओर जाने के अतिरिक्त अन्य कोई विकल्प नहीं था। लाचार मैं शैलखण्ड के वाम भाग से आगे बढ़ने लगा। बाये भाग से वह शैल खण्ड काफी उबड़–खाबड़ व अनेक छोटी–छोटी भुजाओं वाला था। इन भुजाओं के कारण ऊपर चढ़ने या नीचे उतरने में सुगमता रहती है।

नीचे आकर मैंने पाया कि यहाँ कि स्थिति दूसरी है। सम्पूर्ण क्षेत्र पर्वतों, शिलाखण्डों और पत्थरों से भरा था। वनस्पतियाँ भी थीं। छोटे–छोटे पौधे भी थे। इस परिक्षेत्र में भूमिगत मार्गों की स्थिति से मैं अनभिज्ञ था। मार्ग की सुनिश्चितता हेतु समय–समय पर ऊँचे शैलखण्डों पर चढ़कर अवलोकन करता।

सभी तरफ निर्जनता पसरी हुई थी। सहसा एक पर्वत की पन्द्रह–बीस हाथ ऊँची गुफानुमा छिद्र से लगा कि कोई मुझे देख रहा था और अचानक छिप गया। क्या मुझे भ्रम हुआ था ? नहीं ! मेरी शारीरिक व मानसिक स्थिति दोनो ठीक है। भ्रम होने का प्रश्न नहीं था। मुझे लगा कि इसका अनुसंधान करना चाहिये। इतनी ऊँची, दुर्गम और छोटी गुफा में कोई पशु नहीं जा सकता । वह मानव ही होगा।

मन ने प्रश्न किया– 'तो क्या करना चाहिये ? क्या तुम्हारी स्थिति किसी के संसर्ग में जाने लायक है ? बिल्कुल नग्न अवस्था हो गई है।'

'तो फिर क्या किया जाय ?' मन ने ही पुनः प्रश्न किया।

'चाहे जो भी हो, इस प्राणी से मिलना तो पड़ेगा ! बिना मिले उसके संबंध में कोई ज्ञान कैसे होगा ?' मन ने ही प्रत्युत्तर दिया।

अचानक हवा का एक सुखद झोंका आया और जैसे माता प्रकृति ने मेरे कानों में अपना सन्देश दिया..... 'अवश्य मिल !'

उस दुर्गम गुफा निवासी अदृश्य प्राणी से मिलने की उत्कंठा तीव्र हो गई। अब तो माता प्रकृति का सहयोग और आशीर्वाद भी था। उस गुफा में जाने के लिए मन ही मन

मैंने एक मार्ग का निर्धारण किया और उस ओर बढ़ने लगा। वह पन्द्रह बीस हाथ ऊँची दुर्गम चढ़ाई चढ़ने में मुझे दुर्धर्ष परिश्रम करना पड़ा। गुफा छिद्र के पास पहुँच उसका अवलोकन किया और अन्दर कूद गया।

छिद्र से गुफा का धरातल दो ढाई हाथ नीचे था। गुफा दाहिने और बायें दोनों भाग से गहरी थी। मैं दाहिने भाग में सावधानी पूर्वक प्रविष्ट हुआ। भीतर का वातावरण अत्यधिक पवित्रता व दिव्यता से परिपूर्ण था। धूनी जलने के कारण वातावरण उष्ण था। एक त्रिशूल और एक कमण्डल भी एक शिला पर था। निरीक्षण से स्पष्ट था कि यह किसी एकान्तवासी महायोगी की गुफा है।

मैं धूनी के पास बैठ गया। मेरे मन में घबराहट और उत्तेजना नहीं थी, जिज्ञासा थी।

अचानक सम्पूर्ण गुफा एक अनुपम सुगंध से भर गयी। ऐसी मनभावन सुगंध की अनुभूति पूर्व में कभी नहीं हुई थी। एक अतिवृद्ध, कृशकाय और दिव्य पुरुष समतल दीवार से जैसे अचानक ही प्रकट हो गये।

□ □ □ □

उस महायोगी के अधरों पर एक दिव्य सम्मोहक मुस्कान थी। उनके चमकदार नेत्रों में एक अद्‌भुत आकर्षण था। उनसे दृष्टि मिलते ही मेरे नेत्र बन्द हो गये। हाथ श्रद्धा से जुड़ गये। मन विह्वल हो गया। उन्हों ने मेरे झुके हुए मस्तक के शिखा स्थान और ललाट को एक ही हाथ के अँगूठे से स्पर्श किया और तीन बार हल्के दबाव से घर्षण किया।

मेरे सम्पूर्ण शरीर में सनसनी फैल गई। रोम खड़े हो गये। मस्तिष्क बिल्कुल शान्त हो गया..... विचार शून्य.... ! मन एक अद्‌भुत प्रकाश से भर गया। शरीर में जैसे एक नयी ऊर्जा..... एक नयी शक्ति प्रवाहित हो गयी। पूर्व की घटनायें धुँधली हो गईं। शरीर में रह–रह कर रोमांच होने लगा। कुछ क्षणों तक यह स्थिति रही, फिर सबकुछ सामान्य हो गया।

मेरे मुंदे नेत्र खूले। वे वृद्ध ऋषि नेत्र बन्द किये हुए कुछ चिन्तन कर रहे से प्रतीत हो रहे थे। मैं शान्त भाव से बैठा रहा। अचानक उनके नेत्र खुले। उन्होंने मुझे खड़े होने का संकेत किया और स्वयं भी खड़े हो गये। यद्यपि कि मैं अभी तरुण था, पर अभी ही मेरी ऊँचाई ऋषि से थोड़ी अधिक थी। उन्होंने अपने नेत्र उठाये और मुझे देखा। अद्‌भुत् दिव्यता थी उन नेत्रों में। फिर सबकुछ जैसे धुंधला–धुंधला सा होने लगा। मैं जैसे शून्य में विचरण कर रहा था।

सहसा मुझे अपने जाने–पहचाने पर्वत दिखलाई देने लगे। मैं उन पर्वतों के नीचे, शैलों की दरारों, पर्वतों की ऊँचाइयों पर बने खोहों में घूमता रहा। मैं बस देख रहा था। ऐसा लगता था कि मेरी आत्मा अपने नेत्रों के साथ अदृश्य भाव में सर्वत्र भ्रमण कर रही है। मुझे कहीं भी आने–जाने में कोई बाधा नहीं प्रतीत हो रही थी। पर्वत शिखरों की ऊँचाइयों पर, दरारों में, कन्दराओं में, तलहटियों में; यहाँ तक कि जल में भी सुगमता से जा रहा था या ले जाया जा रहा था, या क्या हो रहा था कि वे दृश्य मेरे नेत्रों के सामने जैसे चल फिर रहे थे।

मैंने देखा कि मेरे आश्रयस्थल पर्वत के चारो तरफ दूर–दूर तक के जिन क्षेत्रों को मैं जनशून्य अथवा प्रणीविहीन समझ रहा था, उनमें तो असंख्य प्राणी भरे पड़े हैं। किन्तु स्वस्थ और प्रसन्न नहीं, बल्कि घायलावस्था में असंख्य वेदनायें सहते हुए, भूखे–प्यासे, जीवन की अंतिम आशा लिये अपने उद्धारक की बाट जोहते हुए। उनकी अवस्थायें देख मन विह्वल हो गया। मन की भावनायें उद्वेलित होने लगी। क्या मैं इनकी सहायता कर सकता हूँ ? क्या मैं इनका उद्धार कर सकता हूँ ? करना ही होगा.....। अवश्य..... अवश्य..... !

अचानक योगी जी वहाँ प्रकट हो गये। उनके अधरों पर एक अप्रत्यक्ष सी मुस्कान पलभर को कौंधी। लगा जैसे कि वे मेरे मन को पढ़ रहे थे। अचानक उनके नेत्र कठोर हो गये। निर्मिमेष मेरी आँखों में देखते हुए पूछा– 'कर सकोगे ?'

मेरी आत्मा ने जैसे इस प्रश्न के औचित्य को स्वतः ही समझ लिया हो, मैंने शान्त भाव से उत्तर दिया– 'जी हाँ प्रभु !'

'सबका उद्धार करना होगा ! सबकी सेवा करनी होगी। सभी का पालन–पोषण करना होगा। सभी की सुरक्षा करनी होगी।' उनका स्वर जैसे अन्तरिक्ष से आकर वहाँ अनुगूंजित हो रहा था..... 'सभी का पालन करना होगा। सभी का सदैव शुभ करना होगा। वचन देते हो ?'

'हाँ, मैं वचन देता हूँ।'

'कर्म हेतु प्रस्तुत हो।'

'अवश्य प्रभु !'

'बाधायें विचलित कर सकती हैं ?'

अकस्मात शिव को ऐसा आभास हुआ कि उनके हाथों में एक दृढ़ त्रिशूल है। भयंकर ध्वनि करने वाला एक विशाल वाद्य है। भुजाओं में अपार बल है। शरीर ऊर्जा से और मन उत्साह से परिपूर्ण है। उनके होठों से दृढ़ स्वर गूँजा– 'कोई बाधा नहीं ! कोई भय नहीं ! सबको अभयदान मिलेगा।' स्वप्न भंग हो गया।

मैं चेतनावस्था में आ गया। गुफा..... गुफा में योगी जी..... योगी जी के सम्मुख खड़ा मैं.....! योगी जी ध्यान से देख रहे थे। इतने समय तक उन्होंने एक भी शब्द का उच्चारण नहीं किया था। चेहरे पर वैसी ही चरम शान्ति विराजमान थी, परन्तु नेत्रों की असाधारण चमक अब शान्त हो गई थी, और वे सामान्य दिख रही थीं।

मध्यान्ह बीत गया था। गुफा में पर्याप्त प्रकाश था। मैंने योगी जी को ध्यान से देखा। उनकी उम्र का अन्दाजा तो नहीं लगा पाया, पर वे वृद्ध थे। केशराशि श्वेत हो गई थी किन्तु अभी भी पर्याप्त सघन थीं और चारो तरफ लटकी हुईं थीं।

'बैठ जाओ, वत्स !' योगी जी ने कहा। उनका स्वर गूंजदार था, 'क्या क्षुधा का अनुभव हो रहा है। जल पियोगे ?'

'अभी इच्छा नहीं है प्रभु !' मैंने श्रद्धापूर्वक हाथों को जोड़कर नम्र भाव से कहा।

'तो फिर उठो, प्रस्थान करो। तुम्हें तुम्हारे कर्तव्य से मैं परिचित करा दूँ।' योगी जी

ने खड़े होते हुए कहा। मैं तत्पर भाव से उनके अनुगमन को प्रस्तुत हो गया।

योगी जी उस गुफा से निकल नीचे उतरने लगे। सहसा वे एक बड़े से पत्थर का घेरा काटकर दाहिनी दिशा में थोड़ा नीचे उतरे। वहाँ एक छोटा सा विवर था। वे बिना पीछे मुड़े उस विवर में प्रविष्ट हो गये। मैं उनके पीछे लगभग साथ–साथ ही था।

मैंने देखा, योगी जी वृद्ध अवश्य हैं, पर उनके अंगों में अभी भी पर्याप्त शक्ति और ऊर्जा है। वह एक भूमिगत मार्ग था। जैसे–जैसे हम आगे बढ़ते गये, मार्ग विस्तृत होता गया। आगे जाकर हम एक ऐसे स्थान पर पहुँचे, जो बहुत ही मनोहर और प्राकृतिक सुषमा से भरापूरा था। आज कितने दिनों के बाद ऐसा नयनाभिराम दृश्य देख हृदय भावाभिभूत हो गया। कुछ क्षण तक मैं ठगा सा उन दृश्यों को देखता रहा। हरे–भरे वृक्ष, उनपर सुन्दर लतायें और खिले हुए रंग–बिरंगे पुष्प। विश्राम करने हेतु छोटी–छोटी समतल शिलायें। बीच में एक छोटा सा जलाशय। एक किनारे कुछ कुटीर थे। अवश्य ही यहाँ जलप्रलय का प्रभाव कम हुआ था।

योगी जी को आया देख तत्काल कुछ लोग वहाँ पहुँचे और सभी आदरभाव से उनके चारो तरफ एकत्रित हो, खड़े हो गये। वे लोग योगी जी के साथ शिव को देख प्रश्नवाचक मुद्रा में थे।

'तो अन्ततः आपने इन्हें तलाश ही लिया गुरुदेव !' उपस्थित लोगों में से एक व्यक्ति ने कहा। शिव ने देखा वह अत्यधिक स्थूलाकार व्यक्ति था, जिसका उदर आगे को निकला हुआ था, और उसका एक कान लुप्त था।

'हाँ बाष्कल !' योगी जी के चेहरे पर असीम उल्लास उभरा, जैसे किसी दुष्कर कार्य की सफलता के बाद उभरता है। वे शिव की ओर देखकर बोले, 'तुम अगर कुछ विश्राम करना चाहो तो.....!'

'नहीं ! नहीं ! गुरुदेव ! विश्राम की अभी आवश्यकता नहीं है।' शिव ने उन्हें आदरपूर्वक गुरुदेव ही कहा, 'हाँ, उत्सुकता असीम है। मैं यह जानना चाहता हू कि आप कौन है ? ये उपस्थित लोग कौन हैं और हम कहाँ हैं ?'

'इतने प्रश्न एक साथ !' योगी जी मुस्कराये। शिव को एक शिला पर बैठने का संकेत किया। उपस्थित लोग और भी पास सिमट आये।

'पुत्र ! तुम्हें किस नाम से संबोधित किया जाय ?'

'मेरे मातापिता तथा परिवारीजन मुझे शिव कहते थे। किन्तु आप जो भी सम्बोधन देंगे, वह स्वीकार्य है।'

'शिव..... अर्थात् कल्याण..... मंगल..... सुख..... !' बुदबुदाते हुए योगी जी सहसा अतीव उत्फुल्लित हो गये। 'कर्म के अनुकूल उचित नामकरण है। वत्स बाष्कल !' योगी जी उस व्यक्ति से संबोधित थे जो अतीव स्थूलाकार था, 'उस बालक की स्थिति को लेकर मन चिन्तातुर है। क्या परिस्थितियाँ हैं ?'

'परिस्थितियाँ तो गुरुदेव अनुकूल ही लगती है। औषधि धीरे–धीरे अपना असर दिखा रहीं है। पूर्व की अपेक्षा ज्वर भी कम हो गया है, परन्तु गुरुदेव उस स्त्री की स्थिति

ठीक नहीं है।'

'पुत्र बाष्कल ! मैं कुछ नयी बनस्पतियाँ ले आया हूँ।' योगी जी ने अपने साथ लाई हुई छोटी गठरी को दिखाते हुए कहा, 'आशा है कि इनके प्रयोग से शीघ्र लाभ होगा। आओ चलते हैं।' और शिव की ओर घूम कर बोले, 'आओ पुत्र ! तुम भी चलो !'

सामने एक छोटी सी पहाड़ी थी, जिसका धरातल ढलवाँ था। उसपर विभिन्न प्रकार की वनस्पतियाँ फैली हुईं थीं। वृक्ष तो कोई नहीं था, परन्तु लता और गुल्म बहुतायत से थे।

योगी जी उस पहाड़ी से दाहिने जो पगडंडी गई थी, उसपर बढ़ चले। शिव बीच में और बाष्कल पीछे–पीछे। कुछ ही आगे जाकर पहाड़ी के लगभग पीछे कुछ गुफानुमा आश्रयस्थल थे। उसके आगे का मार्ग एक बड़े पर्वत ने अवरुद्ध कर दिया था।

वे आश्रयस्थल क्या थे, बस कुछ वृक्षों की टहनियों और लताओं का संकलन था। उस कामचलाऊ आश्रयस्थल में घास और पत्ते की शय्यायें बनी हुई थी, जिसपर कुछ रुग्णों को लिटाया गया था। योगी जी को देखते ही एक स्त्री, जो किसी रुग्ण को सांत्वना दे रही थी, लपक कर आई और उस शय्या पर लेटे व्यक्ति को दिखाते हुए बोली, 'प्रभु ! यह कह रहा है कि मेरे एक पैर नहीं हैं तो क्या, अभी एक तो शेष है। उसकी सहायता के लिए दो हाथ भी तो हैं। अब मुझे अनुमति मिलनी चाहिये कि मैं सक्रिय रूप से गुरुदेव का साथ दे सकूँ। अब मैं स्वस्थ और सक्षम हूँ।'

योगी जी ने प्रसन्न मुद्रा में कहा, 'अवश्य पुत्र ! अवश्य ! आज संध्या को मैदान में सभी लोग एकत्रित हों, जिससे आगे का कर्तव्य निर्धारित किया जाय।' फिर उस स्त्री को देखकर बोले, 'पुत्री ! कोई अत्यधिक चिन्ता की बात नहीं है। तुम इन नयी औषधियों को स्वच्छ कर इनके स्वरस का प्रयोग करो। ईश्वर की कृपा से सब अच्छा होगा।'

□ □ □ □

योगी जी ने एक दृष्टि उपस्थित व्यक्तियों पर डाली और कहना प्रारम्भ किया, 'पुत्रों आज ईश्वर बहुत प्रसन्न हैं, और मेरी प्रतीक्षा भी समाप्त हो गई। शिव हमें मिल गये। अब हमें अपना कार्य तीव्र गति से बढ़ाना है। पुत्र शिव ! तुम ध्यान देकर सुनो ! सैकड़ों योजन विस्तृत यह पर्वतीय क्षेत्र जलप्लावन एवं भूकम्प से अस्त–व्यस्त हो गया है। सैकड़ों नगर और ग्राम विलुप्त हो गये हैं। धरातल में परिवर्तन हो गया है। जहाँ पर्वत थे वहाँ घाटी हो गई है और समतल स्थान पर्वत हो गये हैं। प्रकृति ने तो अपनी स्थिति बदल ली, परन्तु उसके परिणाम स्वरूप जो परिस्थितियाँ उत्पन्न हुईं हैं, हमें अब उनसे निपटना होगा। माता प्रकृति ने बीजांश के रूप में कुछ जीवन बचाये हैं। अब हमें शीघ्रतिशीघ्र उन बीजांशों की सुरक्षा करनी पड़ेगी। इस सम्पूर्ण क्षेत्र में जो भी जीवन शेष है, उन्हें सुरक्षित एक स्थान पर एकत्रित करना होगा। अभी यहाँ पर ठीकठाक और घायलों को मिलाकर कुल बारह लोग हैं। हमें अपनी कार्य योजना बनाकर प्रातः से ही सक्रिय हो जाना होगा। वत्स शिव ! माता प्रकृति की तुम पर विशेष अनुकम्पा है। इस अनुकम्पा और अनुग्रह के प्रतिकार में तुम्हें भी कुछ करना होगा। माता की इच्छा और संकेतों को समझो। इस विस्तृत पर्वत खण्ड में अनगिनत प्राणी अपनी सुरक्षा हेतु तुम्हारी

प्रतीक्षा कर रहे हैं। उन प्राणों को जीवनदान दो ! अभयदान दो !! सुरक्षा दो !!!'' योगी जी ने शिव की ओर देखा, 'यहाँ जिन लोगों को तुम देख रहे हो, ये लोग सक्षम नहीं हैं। विगत दिवसों में अपने भ्रमण के दौरान ये लोग मुझे मिले और मैं इन्हें यहाँ ले आया। इनमें से सभी के प्राण संकट में थे। किन्तु अब ये लगभग इतने स्वस्थ तो हो गये हैं कि मेरी देखभाल की आवश्यकता न हो, पर इनमें से कोई भी ऐसा नहीं है, जो अत्यधिक तीव्र गति से उन प्राणों की रक्षा करने हेतु आवश्यक श्रम कर सके। मेरी इच्छा है पुत्र, इस सम्पूर्ण क्षेत्र को खँगाला जाय। असंख्य प्राण अपने उद्धार की राह देख रहे हैं।'

एक दुबला पतला व्यक्ति जो बहुत देर से कुछ कहने को उत्सुक लग रहा था, योगी जी के चुप होते ही बोल पड़ा– 'गुरुदेव, कल मैं चलते–चलते तिर्यक पर्वत तक चला गया था। वहाँ एक दरार में मुझे एक वस्त्र का टुकड़ा फँसा हुआ दिखा। मैं ज्यादा कुछ कर नहीं सकता था, पर वहाँ हमें शीघ्र ही खोज करनी चाहिये।'

'बन्धु..... !' शिव उस व्यक्ति से सम्बोधित हुए किन्तु नाम न जानने के कारण थोड़ा रुके।

'बलक !' योगी जी ने उस व्यक्ति का नाम बताते हुए कहा– 'शिव ! यह बलक है। यह हमें शिला पर धराशायी एक वृक्ष के नीचे से दबा मिला था।'

'बन्धु बलक ! प्राणरक्षा में क्षणांश का भी महत्व होता है। अगर आपलोग स्वीकृति दें तो मैं अभी उस दिशा में निकलता हूँ। आप सभी कल प्रातः भी आ सकते हैं। मैं चाहता हूँ, मुझे उस स्थान की दिशा और दूरी का अनुमान बताया जाय।'

शिव की बात सुन योगी जी के चेहरे पर असीम शान्ति झलकी, आँखों में प्रसन्नता कौंधी और लुप्त हो गयी।

शिव को तत्काल प्रस्थान को उद्यत देख बलक असीम उत्साह से भर उठा। संकट काल में धैर्य, उत्साह और त्वरित कार्रवाई कितनी महत्वपूर्ण हो सकती है, यह बलक ने देखा था। स्वयं जब वह उस शिला के नीचे दबा हुआ था, उस समय अगर गुरुजी आधी घड़ी और विलम्ब से पहुँचे होते, तो आज वह यहाँ जीवित खड़ा न होता। गुरुजी के वहाँ पहुँचने के कुछ ही देर पहले दो लोगों ने उसके नेत्रों के सामने दम तोड़ा था। वे उसके जितने सौभाग्यशाली न निकले।

वृक्ष के नीचे दबे हुए जब उसने गुरुजी को अपने पास देखा, तो लगा कि ईश्वर आ गये। लेकिन जब वृक्ष के शाखा की मोटाई तथा उसके वजन का अनुमान किया और गुरुजी के दुबले–पतले शरीर को देखा तो मन निराशा से भर उठा। ईश्वर ने सहायक भी भेजा तो शक्तिहीन। अब तो मृत्यु अवश्यंभावी है।

गुरुजी ने धैर्य बँधाते नेत्रों से मुझे सांत्वना दी, उस तने को हिला–डुलाकर उसका अनुमान किया और सीधे खड़े हो गये। कुछ क्षण को उन्होंने गहरी–गहरी सांस ली, अपनी दोनों बाहों को कुछ विशेष तरीके से तोड़ा–मरोड़ा। वे उस तने के निकट आये। सहसा वे झुके और निमिष मात्र में उसे मेरे ऊपर से हटा दिया। आश्चर्य से मेरे नेत्र खुले रह गये। मैं स्वयं उठ नहीं सकता था। दोनों पैर दबकर पिचक गये थे। बस अस्थियाँ नहीं टूटी थी। गुरुजी ने अपने हाथों का सहारा देकर मुझे उठाया। मेरी कटि के नीचे के

अंग प्रायः निष्क्रिय और वेदना की अधिकता से वेदनाहीन हो गये थे। मेरी स्थिति देख गुरुजी ने एक बच्चे की तरह मुझे अपनी पीठ पर लाद लिया और तीव्र गति से आगे बढ़ गये थे।

आज उन्हींकी कृपा से वह जीवित बचा है। घर–द्वार, ग्राम–समाज, भाई–बन्धु सभी उस महाप्रलय में विलीन हो गये थे। उसने तो निश्चय कर लिया कि शेष जीवन वह गुरुजी के सान्निध्य में बितायेगा। वे तो उसके लिए ईश्वरतुल्य थे।

गुरुजी बहुत कम बोलते थे, या यों कहा जाय कि आवश्यकतानुसार ही बोंलते थे। सदैव सजग रहते थे। कब विश्राम करते थे, यह वह नहीं जान पाया। उसे गुरुजी के साथ रहते हुए छः–सात दिन हो गये थे। गुरुजी द्वारा लाई गई औषधियों के लेप से उसके कुचले पैरों को जैसे नवजीवन मिल गया था। तीसरे दिन ही वह उठकर टहलने का प्रयास करने लगा। गुरुजी ने जब उसे टहलते देखा तो उत्साहित किया– ''जितना टहलोगे, उतना आरोग्यलाभ होगा।'' और कल वह टहलते–टहलते उस तिरछे हुए पर्वत की ओर चला गया था, जिसका नाम गुरुजी ने तिर्यक पर्वत रखा था, और जहाँ उसे कुछ वस्त्र के टुकड़े फँसे हुए दिखाई दिये।

शिव जब अकेले जाने को उद्यत हुए, उस समय वह साथ चलने का आग्रह करने लगा। गुरुजी ने उसे मना नहीं किया, और शिव ने सोचा कि एक से भले दो।

आश्रयस्थल से तिर्यक पर्वत की दूरी काफी कम थी। मार्ग में अनेक छोटी–बड़ी चट्टानें अव्यवस्थित रूप से पड़ी थीं। शिव ने भविष्य में यहाँ भी भूमिगत मार्ग के संधान का निश्चय किया। शिव तीव्र गति से इधर–उधर का अवलोकन करते हुए आगे बढ़ते जा रहे थे। बलक अपनी शक्ति भर शिव के साथ ही रहने का प्रयास कर रहा था, परन्तु उसका दुर्बल शरीर और घायल पैर उसकी गति में बाधा डाल रहे थे।

शिव उससे कुछ आगे निकल गये थे। शिव ने देखा कि बलक थक गया है। टहलते हुए चलने में और तीव्र गति से चलने में बहुत अन्तर है। शिव रुक गये। बलक के निकट आने पर शिव ने कहा– ''बन्धु ! आपको चलने में असुविधा हो रही है और लक्ष्य अभी दूर है। मेरे पास इसका एक हल है और मुझे आशा है आपको आपत्ति भी नहीं होगी।''

शिव की बात सुनकर बलक अचकचा गया। इस निर्जन में शिव के पास कौन सा हल है और उसकी आपत्ति का क्या अर्थ ? उसने प्रश्नवाचक नेत्रों से शिव को देखा। जबतक वह कुछ समझ पाता तबतक शिव ने उसे फुर्ती से उठाकर अपने कंधों पर बैठा लिया और कहा– ''आप निश्चिंत होकर बैठें। अब मेरी गति भी कम नहीं होगी और आपके पैरों को विश्राम भी मिल जायेगा। इस प्रकार हम अपने गंतव्य तक शीघ्र पहुँच पायेंगे।''

बलक को अपने कंधे पर बैठाये शिव लगभग दौड़ रहे थे। बलक का अन्तर्मन भावविह्वल हो गया। वह शिव के व्यक्तित्व से, उनके व्यवहार से, उनकी ऊर्जा से अभिभूत था। पहले गुरुजी अब शिव। दूसरे का भला सोचने वाले ! सजग ! तत्पर ! उसे अपना घर–परिवार और समाज याद आने लगा। इतनी उम्र हो गई थी, पर अभी तक ऐसे अद्‌भुत व्यक्तियों का दर्शन नहीं हुआ था। यह उसके पूर्वजन्म के किन्हीं सत्कर्मों

का ही परिणाम है जो ऐसी भव्य विभूतियों के दर्शन ही नहीं हुए बल्कि वह उनके साथ है। बलक का अपने मन में किया गया पूर्व का निश्चय और दृढ़ हो गया।

शिव द्रुतगति से पैर बढ़ाते जा रहे थे। बलक उनके कंधों पर आराम से बैठा अपने सौभाग्य–स्वप्न में डूबा था। आगे का स्थान ढलवाँ था, जिसमें अनेक छोटे–बड़े शैल–शिखर सर्वत्र बिखरे पड़े थे। अनेक चट्टानें जो अपेक्षाकृत बड़ी थीं, उनका घेरा काटकर आगे बढ़ना पड़ रहा था। शिव, जो यद्यपि कि अभी तरुण थे, परन्तु उनकी लम्बाई सामान्य व्यक्ति के अनुपात में लगभग हाथ–सवाहाथ ऊँची थी। शरीर चुस्त, पेशियाँ गठी हुई। नेत्रों में तेजस्विता से परिपूर्ण अद्‌भुत ज्योति।

अचानक बलक की सोच बदली। यह क्या ? वह इतनी देर तक शिव के कंधे पर बैठा रहा। इन तेजस्वी पुरुष के कंधे पर। अबतक मेरे पैरों को पर्याप्त विश्राम मिल गया है। और विश्राम मिले या न मिले.... भला वह नगण्य सा व्यक्ति.... ऐसे महापुरुष के कंधे पर.....। इसके आगे वह कुछ सोच नहीं पाया। हड़बड़ा कर उसने शिव से कहा– ''प्रभु ! मेरे पैरों को पर्याप्त विश्राम मिल गया है। आप कृपाकर मुझे नीचे उतार दें। अब मैं स्वयं चलने के लिए सक्षम हूँ।''

''ठीक है ! किन्तु यदि ऐसा आप मेरी थकान की बात सोचकर कह रहे हैं, तो आप निःसंकोच बैठे रहें।'' शिव ने सरल स्वर में कहा।

''नहीं ! नहीं ! मैं ऐसा सोच भी नहीं सकता। मुझे पर्याप्त विश्राम मिल गया है।''

शिव ने बलक को अपने कंधे से उतार दिया। बलक अपने में अद्‌भुत स्फूर्ति का अनुभव कर रहा था। मार्ग में दो–तीन स्थानों पर शिव और बलक ने पहचान–चिन्ह निर्मित किये थे, और अन्य पहचान–चिन्हों को अपनी स्मृति में सहेजा था।

गंतव्य पर पहुँचकर बलक शिव को उस स्थान पर ले गया, जहा उसने वस्त्र का टुकड़ा देखा था। वह वस्त्र का टुकड़ा अभी भी वहीं था। वह वस्त्र पत्थर के नुकीले सिरों में उलझा हुआ था। शिव ने ध्यान से उसका निरीक्षण किया।

पत्थर में उलझा वह वस्त्र, उसकी दिशा और आसपास के पत्थरों के प्रवाह की दिशा का अनुमान लगाकर शिव ने बलक से कहा– ''यह जलप्रवाह के साथ बहते किसी व्यक्ति का वस्त्र है, जो इन नुकीले पत्थरों में उलझा अवश्य था, पर इससे उसकी प्राणरक्षा नहीं हो सकी। आसपास के निरीक्षण से स्पष्ट है कि जो लोग बहकर गये, उनके जीवित होने की संभावना बहुत कम है, परन्तु जिधर से प्रवाह आया था, उधर कुछ आशा की जा सकती है।''

शिव ने कुछ रुककर फिर कहा– ''बन्धु बलक ! मैं समझता हूँ अब आपको यहाँ से वापस जाना चाहिये। मैं उस दिशा में जाना चाहता हूँ । उधर चढ़ाई है, और आपकी शारीरिक स्थिति ऐसी नहीं है। आप मेरा कहना मानें और वापस गुरुजी के पास जायें। मैं उधर का अनुसंधान कर शीघ्र ही वापस लौटूंगा।''

शिव की बात सुन बलक अधीर होकर बोला– ''नहीं, नहीं ! भला ऐसा कैसे हो सकता है। और मुझे किसी प्रकार की कठिनाई नहीं है। आप मेरी चिन्ता न करें !''

बलक कुछ क्षण रुका फिर सकुचाते हुए बोला– ''आप अपनी गति तीव्र रखें। मैं भले ही थोड़ा पीछे रह जाऊँगा, परन्तु आपका अनुसरण करता रहूँगा। और केवल चलना ही तो नहीं है, अवलोकन भी तो करना है। आप मुझे बिल्कुल निर्बल न समझें । मेरे पिता लकड़ी का काम करते थे, उनके बाद मैं उस कार्य को करने लगा। परिश्रम मेरा स्वभाव है। वह तो मेरे पैर दब जाने से मुझे कुछ कठिनाई अवश्य हुई, पर गुरुजी की औषधियों ने तो जादू कर दिया। इसके पूर्व भी मैंने अपने कार्य के दौरान अनेकों बार चोटें खाई और वैद्यजी से औषधि भी मिली, परन्तु गुरुजी ने तो चमत्कार ही किया था। और अब आप जैसे सत्पुरुषों का सान्निध्य !'' फिर वह जिद भरे स्वर में बोला– ''आप कुछ भी कहें, मैं आपको छोड़नेवाला नहीं। आप निश्चिंत रहें, मैं आप पर बोझ नहीं बनूँगा।''

शिव ने उसे स्नेह भरी दृष्टि से देखा और खड़े होते हुए कहा– ''ठीक है, आपकी ऐसी इच्छा है तो ऐसा ही सही।''

मार्ग में एक ऊँची शिला को देखकर शिव ने कहा– ''आप इसका घेरा काटकर आगे बढ़िये और मैं इसके ऊपर जाकर उस तरफ आता हूँ। ऊँचाई से दूरतक का दृश्य स्पष्ट दिखाई देगा। आप उस तरफ से चलें, मैं भी आ ही रहा हूँ।''

बलक को भी शिव की बात सर्वथा उचित लगी। उस ऊँची चट्टान पर चढ़ना बलक के लिए असंभव नहीं तो दुःसाध्य अवश्य था। आहार के नाम पर गुरुजी के आश्रम में जो फल–फूल मिला था, वहीं हुआ था। मार्ग में दो स्थानों पर जलस्रोतों से उन्होंने जल अवश्य पिया था, परन्तु जल शारीरिक ऊर्जा की पूर्ति नहीं करता। शिव के निर्देश पर बलक उस चट्टान का घेरा काटकर आगे बढ़ने लगा।

बलक के जाते ही शिव तीव्र गति से उस चट्टान पर चढ़ने लगे। इन चट्टानों पर चढ़ना शिव के लिए अब बहुत सहज था। अपने लम्बे कद के कारण शिव के हाथ–पैर भी लम्बे थे, जिसका अतिरिक्त लाभ शिव को मिलता था।

उस ऊँची चट्टान अथवा पहाड़ी पर चढ़कर शिव ने देखा– आगे का स्थल टूटे हुए पर्वतीय चट्टानों से भरा हुआ था। उनको देखने से यह स्पष्ट लग रहा था कि उनका प्रवाह इधर ही हुआ है। जल निकल जाने के बाद उस जलप्रवाह के साथ बहते हुए छोटे–बड़े पत्थरों को देखकर ऐसा लगता था, जैसे यह पत्थरों की ही नदी है..... शैल नदी। इस शैल नदी के दोनों ओर का भाग छोटे–बड़े पर्वतीय चट्टानों से भरा था।

शिव ने उस प्रवाह के दोनो तरफ की स्थिति का अवलोकन किया। उस शैल नदी के दोनों ओर इस विनाशलीला का प्रभाव कम हुआ लग रहा था, किन्तु उस क्षेत्र की दुर्गमता देखकर शिव को लगा कि यह क्षेत्र प्रायः जनशून्य ही होगा, परन्तु अनुसंधान तो करना होगा। दूर कहीं–कहीं हरितिमा भी दिखाई दे रही थी। यह मैदानी क्षेत्र नहीं था। छोटी–बड़ी पहाड़ियों के कारण उनके पीछे का भू–भाग दिखाई नहीं देता था।

सहसा शिव के मस्तिष्क में वह दृश्य कौंधा, जो उन्होने अपने आश्रयस्थल से देखा था। शिव ने एकबार पूरे परिदृश्य का विहंगम अवलोकन किया और तीव्र गति से नीचे उतरने लगे।

शिव नीचे उतरे। बलक अभी पहुँचा हीं था, और एक शिला पर थोड़ा विश्राम के लिए बैठ गया था। उसे लगा था कि शिव के आने में अभी देर है, तबतक कुछ आराम ही कर लिया जाय। परन्तु शिव तो आ गये।

वह तत्परता से उठ खड़ा हुआ। किन्तु थकान उसके चेहरे पर स्पष्ट परिलक्षित हो रही थी। शिव ने कहा– ''बन्धु ! आप यहाँ इस शिला पर कुछ देर विश्राम कर लें। तबतक मैं पहाड़ी के उस पार का अवलोकन करके आ रहा हूँ। संभव है इस विनाशलीला का प्रभाव उधर कुछ कम हो और कुछ लोग जीवित मिल जायें। या कोई छोटा–मोटा ग्राम या पुरवा ही मिल जाये, क्योंकि अभीतक तो हमें जीवन के चिन्ह नहीं मिले हैं।''

बलक का मन कह रहा था कि वह शिव के साथ ही चल दे, परन्तु शरीर विश्राम के लिए पुकार रहा था। उसे शिव की बात उचित लगी। कहा– ''आधी घड़ी का विश्राम मेरे लिए बहुत है। किन्तु अगर आपके लौटने में विलम्ब हुआ तो मैं क्या करूँगा ?''

''विलम्ब नहीं होगा, आप निश्चिन्त रहें।'' शिव ने निश्चयात्मक स्वर में कहा।

शिव बलक को उस शिला पर विश्राम करते छोड़ उस शैल प्रवाह की दिशा में आगे बढ़े। थोड़ा ही आगे जाने पर उस शैलनद के दोनों किनारों में कुछ क्षत–विक्षत शव और मानव अंग यत्र–तत्र दिखने लगे। एक पहाड़ी पर मानवों के आवागमन से बनी पगडंडी दिखी। निश्चय ही आसपास कुछ ग्राम अथवा पुरवे अवश्य हैं, जहाँ के लोगों के आवागमन के कारण यह मार्ग बना है। शिव ने बलक को साथ ले लेना उचित समझा। वे लौटकर पुनः उस स्थान पर आये जहाँ बलक को विश्राम हेतु छोड़ा था। शिव के अपने अनुमान से वह आधी घड़ी के पूर्व ही लौट आये थे। यहाँ आकर शिव ने देखा, बलक अपने स्थान पर नहीं है। शिव ने इधर–उधर देखा, परन्तु बलक उन्हें कहीं नहीं दिखा। शिव विलम्ब करना नहीं चाहते थे। उन्होंने पुकार लगाई– ''बन्धु बलक ! आप कहाँ हैं ?'' कोई प्रत्युत्तर नहीं मिला। शिव को कुछ चिन्ता हुई। कहीं किसी वन्यपशु ने बलक को हानि न पहुँचाई हो , परन्तु ऐसा कोई चिन्ह उन्हें वहाँ नहीं दिखा। अभीतक तो उन्हें किसी जीवजन्तु के दर्शन नहीं हुए थे। बलक स्वयं ही कहीं गया होगा।

शिव अपना आगे का कर्तव्य निश्चित कर ही रहे थे कि उस शैल नद के दाहिने किनारे की एक बड़ी चट्टान के पीछे से बलक का चेहरा दिखा। बलक ने भी शिव को देख लिया और हाथ हिलाकर अपनी ओर बुलाया। अवश्य उस चट्टान के पीछे कुछ है।

दूरी ज्यादा नहीं थी। शिव शीघ्र ही उस स्थान पर पहुँचे। किन्तु वहाँ पहुँचकर शिव ने जो दृश्य देखा, उसे देखकर उनका हृदय विगलित हो गया। दो पुरुष, एक स्त्री और एक बालक के शव क्षत–विक्षत अवस्था में उन चट्टानों में फँसे पड़े थे। पत्थरों से टकराने के कारण उस बालक का मस्तक फट गया था, स्त्री का एक पैर जांघ के पास से उखड़ गया था और दोनों पुरुषों के शव हिंस्र वन्य पशुओं द्वारा भँभोड़े गये लग रहे थे। एक पुरुष की बाँह उस अभागे बालक की पीठ पर अटकी थी। कदाचित वह बालक को अपनी गोद के आश्रय में रखकर बचाना चाहता था, परन्तु वह स्वयं ही इस महाप्लावन का शिकार हो गया था। लग रहा था ये सभी एक ही परिवार के थे। शिव के

मन में एक हूक सी उठी–

'आह ! महाकाल भी कितना क्रूर है। उसके समक्ष हम कितने बेबस हैं। हमारी हेकड़ी तो बहुत है, पर औकात कुछ नहीं।'

शिव ने बलक को देखा। बलक ने बताया कि जहाँ वह बैठा था वहाँ से उनके जाने के थोड़ी ही देर बाद उसने सोचा कि शिव तो आगे गये हैं, मैं जरा इस शैलनद के किनारे तक देख आऊँ। इस बड़ी चट्टान के पीछे आते ही मैंने यह दृश्य देखा।

शिव बलक की बात भी सुन रहे थे और उन शवों को ध्यान से देखते भी जा रहे थे। बलक की बात समाप्त होते ही शिव ने कहा– ''इन शवों को देखकर लगता है कि ये इस दिशा से बहकर आये हैं। अगर ये शव उस शैलनद के मध्य में होते तो हमें इनके अवशेष भी न मिलते। किनारे होने के कारण ये बच गये। इसका अर्थ है कि कोस दो कोस के अन्तर्गत कुछ ग्राम हो सकते हैं। बन्धु बलक ! हम आगे बढ़ते हैं, और किनारे की पहाड़ियों का अवलोकन करते हैं, पगडंडियों के निशान ढूँढते हैं, क्योंकि हम प्राणी जहाँ रहते हैं, वहाँ के आसपास के क्षेत्र में अनेक ऐसे चिन्ह बन जाते हैं, जो निर्जन में भी पहचाने जा सकते हैं।'' कहते हुए शिव आगे बढ़े।

मार्ग में बलक ने शिव से कहा– ''प्रभु ! यदि आप क्रोधित न हों तो एक बात कहना चाहता हूँ।''

''निःसंकोच कहें बन्धु !'' शिव ने कहा।

''आप मुझे अन्धु–बन्धु न कहा करें। सीधे बलक कहें। दूसरे की प्राणरक्षा, दूसरे का कल्याण चाहने को तत्पर आपलोगों का मैं सेवक बनकर रह सकूँ, यह मेरा सौभाग्य है।'' बलक ने श्रद्धा भरे स्वर में कहा।

चलते–चलते ही शिव ने कहा– ''ठीक है बलक ! तुम्हारी ऐसी इच्छा है तो ऐसा ही सही।'' कहते हुए शिव का स्वर कुछ विनोदमय हो गया– ''फिर तुम्हें मेरी भी एक शर्त माननी होगी। तुम भी मुझे केवल शिव कह सकते हो।''

शिव की बात सुन बलक गद्‌गद् हो गया। अचानक शिव रुक गये। अपनी दाहिनी ओर की पहाड़ी पर शिव को पगडंडी होने का आभास हुआ। शिव ने बलक को वह पगडंडी दिखाते हुए कहा– ''हम उस पगडंडी के सहारे आगे बढ़ते हैं। देखते हैं, आगे क्या है ?''

शिव और बलक दोनों उस ओर अग्रसर हुए।

□ □ □ □

वह पगडंडी पहले ऊपर को गई फिर घेरा काटकर नीचे आने लगी। पहाड़ी के उस पार शिव को नीचे तराई में कुछ घर दिखे। पेड़–पौधे भी दिखे। शिव और बलक कदम बढ़ाये चले जा रहे थे। पर्वतीय पगडंडियाँ सर्पाकार होती हैं। ऊँचाई से देखने पर लगता है किसी विशालकाय अजगर ने पर्वत को जकड़ रखा है।

बस एक घेरा और रह गया था। नीचे के घर अब स्पष्ट दिख रहे थे। एक–दो

निवासी भी चलते–फिरते दिखे। उन्होंने भी इनको देखा, फिर भी अभी उनतक पहुँचने में लगभग आधी घड़ी लगना था। शिव सोचने लगे– कोई ऐसा ध्वनि–संकेत होना चाहिये, जिसे दूर से ही सुना जा सके और समझा जा सके।

दो अपरिचित लोगों के इधर आने का समाचार पूरे ग्राम में प्रचारित हो गया था। ग्राम क्या था, एक पुरवा था। यत्र–तत्र आठ–दस घर दिखे जो पत्ते, वृक्षों की टहनियों और शिलाओं के सहयोग से निर्मित था। स्त्री–पुरुष–बालक–वृद्ध मिलाकर कुल चालीस–बयालीस लोगों की आबादी थी।

नीचे तीन–चार वृद्ध और कुछ वयस्क पुरुष हमारी राह देख रहे थे। उनके चेहरे पर सरलता का भाव था। शिव के भव्य व्यक्तित्व से वे स्पष्ट रूप से प्रभावित थे।

शिव ने समय व्यर्थ गँवाना उचित नहीं समझा और उस समूह को संबोधित करते हुए कहा– ''आज इतने दिन के बाद इस विनाशलीला से आप लोगों को बचे हुए देखकर हमें अति प्रसन्नता हो रही है। मैं इस ग्राम के कुलवृद्ध से कुछ बात करना चाहता हूँ। आप चाहें तो यहीं पर अथवा कहीं बैठकर बातें की जा सकती हैं।''

शिव की बात सुनकर उस समूह से एक वृद्ध व्यक्ति आगे बढ़ा और उनकी अगवानी करता सा बोला– ''आप इस ओर आयें। उस वृक्ष की छाया तले बैठकर बात की जाय।'' कहते हुए उसने एक नौजवान को इशारा किया। वह युवक लपकता हुआ निकल गया। शिव और बलक सहित वह समूह एक वृक्ष के नीचे पड़ी शिलाओं के पास आया। वह व्यक्ति एक शिला को अपने हाथ से स्वच्छ करता हुआ बोला– ''मान्यवर, आपलोग इस पर आराम से बैठें और बतायें कि आपका यहां आना किस प्रयोजन से हुआ है। इससे पहले आपलोग जल ग्रहण करें और अपना परिचय दे दें तो हमें बहुत प्रसन्नता होगी।'' वृद्ध व्यक्ति ने नम्र स्वर में कहा।

तबतक वह युवक लौट आया था। उसके साथ कुछ अल्पवयस्क बालक भी थे। वे अपने साथ कुछ फल और जल की व्यवस्था कर लाये थे। शिव और बलक ने पहले कुछ फल खाये और जल पिया। फिर शिव ने कहा– ''मेरा नाम शिव है, और इनका नाम बलक है। विगत दिवस हुए जलप्लावन का असर यहां बहुत कम है, परन्तु ऊपरी क्षेत्र में प्रकृति की भयंकर विनाशलीला हुई है। कुछ लोग बचे हैं, जिनका हम यथासंभव उपचार आदि कर रहे हैं, परन्तु हम चाहते हैं कि इस पूरे ऊपरी क्षेत्र की छानबीन की जाय, ताकि जहां जीवन बचा हो, उसे सुरक्षित किया जा सके। हमारी संख्या बहुत कम है, और क्षेत्र बहुत विस्तृत है। इस कार्य में हम आपसे सहायता की अपेक्षा रखते हैं।''

शिव की बात सुन वह वृद्ध व्यक्ति बोला– ''मैं सुमनस हूं। यह पुरवा एक तरह से मेरा परिवार ही है। ऊपर हुई विनाशलीला से हम प्रभावित तो नहीं हुए, परन्तु घोर वृष्टि और मेघों के प्रलयंकारी गर्जन से हम कई दिनों तक बेचैन रहे। वैसे भी ऊपर कोई कभी–कभार ही जाता है। जलाशय से मछली मिल जाती है, और वृक्षों से फल मिल जाते हैं। हिंसक जीव यहां हैं नहीं। परन्तु मैं समझ नहीं पा रहा हूं कि हम आपकी क्या सहायता कर पायेंगे। आप ही बतायें कि हम आपकी क्या सहायता करें ?''

''हम बचे हुए लोगों और घायलों को एकत्र कर उनकी जीवन रक्षा का प्रयत्न करना

चाहते हैं। क्षेत्र बहुत विस्तृत है, और हमारी संख्या बहुत कम है। हम आपसे कुछ ऐसे उत्साही नवयुवक चाहते हैं, जो इस कार्य में हमारी सहायता कर सकें। हो सकता है जैसे आपलोग हमें मिले हैं, वैसे कुछ और ग्राम भी आसपास मिल जायें। उन घायलों के लिए हमें आहार, जल और औषधियों की व्यवस्था करनी पड़ेगी। चिकित्सा के लिए हमारे गुरुजी अपने आश्रम पर हैं। मैंने अपना कार्य और अपनी आवश्यकता आपको बता दी। अब आप बतायें कि इसमें आप हमारी क्या सहायता कर सकते हैं।'' शिव ने संक्षेप में अपनी बात बताते हुए कहा।

शिव की बात सुनकर वहां उपस्थित समूह में सुगबुगाहट शुरु हो गई। सुमनस ने शिव की बातों की गंभीरता को समझा। उसने अपने लोगों को देखते हुए कहा– ''सब लोग ध्यान से मेरी बात सुनें और समझें। परोपकार का अवसर जीवन में सदैव नहीं आता है। आज किसी और पर संकट आया है, कल हमारे ऊपर भी आ सकता है। आज हम किसी की सहायता करेंगे तो कल हम भी सहायता की अपेक्षा कर सकते हैं। आपलोगों में से जो–जो इस कार्य के लिए उत्सुक हो, वह आगे आये।''

शिव को यह देखकर सुखद आश्चर्य हुआ कि प्रायः बालकों को छोड़कर सभी आगे आ गये। वृद्धों ने भी स्वयं को इस कार्य के लिए प्रस्तुत किया। उनमें एक युवक कुछ कहना चाह रहा था परन्तु किसी कारणवश झिझक रहा था। शिव ने उस युवक को अपने पास बुलाया और पूछा– ''आपका नाम क्या है ? आप कुछ कहना चाह रहे हैं, पर हिचक रहे हैं। बतायें, क्या बात है ?''

युवक ने सुमनस की ओर देखा। सुमनस ने कहा– ''यह भूमा है। बचपन से ही यह सुनता बहुत कम है, परन्तु यह हमारे ग्राम–परिवार का सबसे उत्साही युवक है। अभीतक हमलोगों में जो बातें हुईं, उसे यह पूर्णतः समझ नहीं पाया है, परन्तु हमारी बातचीत और हमारे हावभाव देखकर इसे यह आभास हो गया है कि कोई बहुत बड़ी बात है और वह भी उसमें सम्मिलित होना चाहता है।'' फिर भूमा की ओर घूमकर जरा जोर से बोले– ''भूमा ! ये शिव हैं। ऊपरी क्षेत्र में हुई विनाशलीला से बचे लोगों को ढूंढने और उनकी सहायता करने का प्रयत्न कर रहे हैं। इन्हें हमारी सहायता चाहिये। क्या कहते हो ?''

''कहना क्या है, चलना है। क्या मैं चानू को भी साथ ले लूं ?'' फिर उसने शिव को देखते हुए कहा– ''मैं सुनता कम हूं, पर कार्य सबसे ज्यादा करता हूं। मुझे तो अवश्य ही जाना है, पर चानू मेरे साथ रहे तो और अच्छा हो।''

भूमा अभी अपनी बात कह ही रहा था कि कुछ और युवक वहां पर आये। सुमनस ने उन्हें देखते ही कहा– ''लो तुम्हारा चानू आ गया। पूछो कि क्या यह तुम्हारे साथ जायेगा ?'' कहते हुए सुमनस ने शिव से कहा– ''मान्यवर शिव ! मेरे विचार से संध्या होने में अब अधिक विलम्ब नहीं है। रात्रि में हम कुछ कर नहीं पायेंगे, सो आपलोग यहीं रात्रि विश्राम करें। कल प्रातः से ही हम इस कार्य में लग जायेंगे। हम यहां से ज्यादा दूर तक नहीं जाते, कोई आवश्यकता ही नहीं पड़ती, सो ऊपरी क्षेत्र के संबंध में हमें ज्यादा जानकारी नहीं है, किन्तु हम आपके निर्देशों का समुचित पालन करेंगे।''

You've Just Finished your Free Sample

Enjoyed the preview?

Buy: http://www.ebooks2go.com